शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

# आत्मधर्म

: संपादक : रामजी माणेकचंद दोशी वकील

अप्रेल : १९६० ☆ वर्ष पन्द्रहवाँ, चैत्र, वीर नि०सं० २४८६ ☆ अंक : १२

## सर्वज्ञ की स्तुति

सर्वज्ञ भगवान की निश्चय स्तुति का सम्बन्ध सर्वज्ञ के साथ नहीं, किन्तु अपने आत्मस्वभाव के साथ ही है। जबतक सर्वज्ञ पर लक्ष रहे और अपने आत्मस्वभाव में लक्ष न करे, तबतक सर्वज्ञ भगवान की निश्चय स्तुति नहीं होती। मेरा आत्मा ही सर्वज्ञशक्ति से परिपूर्ण है—ऐसा प्रतीति में लेकर निजस्वभाव के साथ जितनी एकता करे, उतनी सर्वज्ञभगवान की निश्चय स्तुति है और सर्वज्ञ की ओर के बहुमान का भाव आये, वह व्यवहार स्तुति है।

वार्षिक मूल्य तीन रुपया

[ १८० ]

एक अंक चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ( सौराष्ट्र )

# आत्मधर्म के ग्राहकों को नम्र सूचना

चैत्र मास में बारह मास का चन्द समाप्त होता है। महँगाई के कारण ४ ॥) में लागत पड़ने पर भी घाटा उठाकर ३) (तीन रुपया) सालाना ही चन्दा रखा गया है। अत: मनीआर्डर द्वारा ३) रु० भेज देवें। वी० पी० करने में ॥=) व्यर्थ ही लग जाते हैं।

**दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट**

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

# जैनदर्शन शिक्षणवर्ग

ग्रीष्मावकाश की छुट्टियों में विद्यार्थियों के लिये सोनगढ़ (सौराष्ट्र) में जैनदर्शन शिक्षणवर्ग चालू होगा जो कि—वैशाख सुदी १४ मंगलवार ता० १०-५-६० से शुरू होकर जेठ सुदी ६ ता० ३१-५-६० तक चलेगा। यह शिक्षणवर्ग इससमय चार साल बाद खुला है, अत: हरेक जिज्ञासु विद्यार्थी धार्मिक शिक्षण का लाभ लेकर छुट्टियों का सदुपयोग करें, ऐसी खास प्रार्थना है। विद्यार्थियों के लिये रहने, जीमने की व्यवस्था संस्था की ओर से होगी। आने के लिये प्रथम पत्र द्वारा जवाब मँगा लेवें।

**दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट**

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

# आत्मधर्म

: संपादक : रामजी माणेकचंद दोशी वकील

अप्रेल : १९६० ☆ वर्ष पन्द्रहवाँ, चैत्र, वीर नि०सं० २४८६ ☆ अंक : १२


# आत्मार्थी जीव का उत्साह

## और

# आत्मा की लगन

(लेखाङ्क-३)

[श्री पंचास्तिकाय गाथा १०३ के प्रवचनों से]

चैतन्यानन्द में झूलते हुए सन्तों ने इन शास्त्रों की रचना की है। अंतर में आनन्द की झलक दिखाकर जगत को सम्बोधन किया है कि—"अरे जीवों! रुक जाओ... बाह्य में तुम्हारा आनन्द नहीं है; तुम्हारा आनन्द तो तुम्हारे अंतर में है।" अहा! बाह्य में वेगपूर्वक दौड़ते हुए जगत को सम्बोधन करके सन्तों ने रोक दिया है। इस सम्बोधन को झेलनेवाला जीव कैसा होता है ?—वह इस प्रवचन में देखिये।

आत्मा में मोक्ष की झलक लेकर सन्तों ने इन शास्त्रों की रचना की है। आत्मार्थी जीवों को हित का मार्ग दर्शाने के लिये यह शास्त्र रचे गये हैं। क्षण भर अंतर में स्थिर होता है, तब आनन्दमग्न हो जाते हैं और किंचित् बाहर आने पर वृत्ति उठती है, तब शास्त्र लिखते हैं.... इसप्रकार चैतन्यानन्द में झूलते हुए सन्तों ने यह शास्त्र रचे हैं। अंतर के आनन्द की झलक दिखाकर जगत् को संबोधन किया है कि अरे जीवों! रुक जाओ... बाह्य में तुम्हारा आनन्द नहीं है; तुम्हारा आनन्द तुम्हारे अंतर में है। अहा! बाह्य वेग से दौड़ते हुए जगत को सन्तों ने सम्बोधन कर रोक दिया है।

और यह बात झेलनेवाला जीव कैसा है ?—आत्मार्थी है, आत्मार्थ के लिये मरने को तैयार है, 'काम एक आत्मार्थ का अन्य नहीं मन रोग;' अपना आत्मार्थ साधने के अतिरिक्त, जिसके अंतर

में अन्य कोई शल्य (मानादि की) नहीं है; दुनिया अपने को माने या न माने, इसकी उसे चिन्ता नहीं है; जगत् में दूसरों का सम्बन्ध रहे या न रहे, उधर देखता भी नहीं; एकाकी होकर भी अपने आत्मा को ही साधना चाहता है; ऐसा आत्मार्थी जीव, ज्ञानी-सन्तों के चरण की अतिशय भक्तिपूर्वक यह बात झेलता है। जिसे ऐसी आत्मार्थिता हो, उसे आत्मा समझानेवाले गुरुजनों के प्रति अंतर में कितना प्रमोद, भक्ति, बहुमान, उल्लास और अर्पणता का भाव आता है! आत्मा समझानेवाले के प्रति विनय से अर्पित हो जाता है। अहो नाथ! आपके लिये मैं क्या-क्या करूँ? ...आपने मुझ पामर पर अनंत उपकार किया है... आपके उपकार का बदला मैं किसी प्रकार नहीं दे सकता।

जिसप्रकार, किसी को फुँकार मारता हुआ सर्प फन उठाकर डस ले, और विष चढ़ने के कारण वह जीव अचेत होकर तड़प रहा हो, वहाँ गारुड़ी मंत्र द्वारा कोई सज्जन उसका विष उतार दे तो वह जीव उसके प्रति कितना उपकार व्यक्त करेगा? कहेगा कि—अहा! आपने मेरा जीवन बचा लिया, मुझे भयंकर वेदना से उबार लिया—इसप्रकार व्यक्त करेगा।

उसीप्रकार बाह्य विषयों से और रागादि कषायों से लाभ माननेवाले, जीव को अनन्तानुबंधी क्रोध से फुँकार मारते हुए मिथ्यात्वरूपी विषैले सर्प ने काट लिया है और वह जीव उबलते हुए पानी की भाँति दुःख के मारे तड़प रहा है; संसार-परिभ्रमण की वेदना से व्याकुल होकर अचेत पड़ा है; वहाँ धर्मात्मा सन्त, ज्ञानरूपी गारुड़ी मंत्र द्वारा उसे दुःख से छुटकारे का उपाय बतलाते हैं। वह उपाय प्राप्त करके उस जीव को सन्तों के प्रति कितनी उपकारक वृत्ति उत्पन्न होगी?—अहा नाथ! आपने मुझे जीवनदान दिया... अनंत दुःख से बचा लिया... सर्प के विष से बचानेवाला तो एकबार मृत्यु से बचाता है, किन्तु हे भगवान! आपने तो मुझे अनंत जन्म-मरण के दुःखों से बचा लिया।

—किन्तु ऐसा सच्चा उपकारी भाव कब जागृत होता है? कि जब सन्तों के बतलाये हुए मार्ग को अपने आत्मा में प्रगट करे।

मोक्ष के साधक वीतरागी सन्तों ने मोक्ष का उपाय बतलाया है, वह मोक्षार्थी जीव को ही परिणमित होता है। जो जीव, विषय-कषाय का अथवा मानादि का अर्थी हो, उसके अंतर में मोक्ष का उपाय परिणमित नहीं होता। जो जीव मोक्षार्थी है, उसी के लिये सन्तों का उपदेश है। समयसार में आचार्यदेव कहते हैं कि —

**एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।**
**अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥१८॥**

मोक्षार्थी जीव को क्या करना चाहिये—वह इसमें बतलाया है। इसीप्रकार १८५ वें कलश में भी मोक्षार्थी जीव के लिये कहते हैं कि—

''मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही सदैव हूँ; और यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के रागादि भाव प्रगट होते हैं, वह मैं नहीं हूँ।''

—इसप्रकार शास्त्रों में मोक्षार्थी जीव के लिये ही सन्तों का उपदेश है।

यहाँ भी (पंचास्तिकाय गाथा १०३ में) यही कहते हैं कि—अर्थतः अर्थी होकर, इस शास्त्र को जानना चाहिये और उसमें कहे हुए पदार्थों में से ''अत्यन्त विशुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव, सो मैं हूँ'—ऐसा निश्चय करना। (निश्चय करने सम्बन्धी विस्तृत विवेचन इस लेख के प्रथम भाग में आ गया है)।

जगत में समस्त पदार्थों का अस्तित्व होने पर भी किसी एक की सत्ता दूसरे में नहीं है। समस्त द्रव्य अपनी-अपनी स्वरूप-मर्यादा में वर्त रहे हैं; अपने स्वरूप की मर्यादा का उल्लंघन करके कोई भी द्रव्य, पर में नहीं जाता। जीव अपने स्वरूप की (अविकार या विकार की) मर्यादा छोड़कर पर में नहीं जाता और जीव की स्वरूपमर्यादा में परद्रव्य नहीं आते। तदुपरान्त, जीव के शुद्धचैतन्यस्वरूप में विकार का भी प्रवेश नहीं है; विकार तो बहिर्लक्षी उपाधिरूप भाव है; शुद्ध चैतन्यभाव के साथ उसकी एकता नहीं हो सकती। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो निर्मल भाव प्रगट होता है, वह तो जीव के स्वरूप में अभेद हो जाता है; इसलिये उसे तो जीव कहा है किन्तु विकार भावों की एकता जीव के शुद्धस्वरूप के साथ नहीं होती, इसलिये शुद्धस्वरूप की दृष्टि से वे जीव नहीं हैं, किन्तु अजीव हैं। पर्याय अपेक्षा से देखने पर विकार, निश्चय से (अशुद्ध निश्चय से) अपना ही है, वह अपना ही अपराधभाव है; और शुद्ध द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से देखने पर (अर्थात् शुद्ध निश्चयनय से) विकार, जीव में दृष्टिगोचर ही नहीं होता, वह शुद्ध चैतन्यस्वरूप ही दिखाई देता है।—इसप्रकार दोनों पक्षों का ज्ञान कराने के पश्चात् आचार्यदेव कहते हैं कि—अपने शुद्धस्वभाव को मुख्यरूप से लक्ष में लेकर, उसकी आराधना कर... और अशुद्धता को गौण करके, उसका आश्रय छोड़।

व्यवहार को उस काल-अर्थात् जब पर्याय को जानता है, उस काल जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है किन्तु उसका आश्रय करने को नहीं कहा। जब पर्याय को देखता है, उस काल में साधक को विकार अपने में आरोपित अनुभव में आता है; किन्तु विकार का अनुभव होने पर भी, उसी काल में साथ ही शुद्ध चिदानन्दस्वभाव का भान भी वर्तता है, इसलिये वह साधक विकार से विमुख होकर शुद्धस्वरूप की ओर ढलता जाता है, अर्थात् स्वभाव और विभाव के बीच निरंतर भेदज्ञान वर्तने के कारण वह साधक, रागादि परिणति को कभी शुद्धस्वरूप से अंगीकार नहीं करता, किन्तु उसे परभावभूत उपाधि जानकर छोड़ता जाता है। रागपरिणति छूटने पर कर्म बंध की अनादिकालीन परम्परा टूट जाती है। रागपरिणति से कर्म का बंधन, उसके उदयकाल में पुनः रागपरिणति और पुनः कर्म बंधन—ऐसी परम्परा अनादि काल से अटूट थी, किन्तु अब जिसकी परिणति स्वभावोन्मुख हो गई है - ऐसे जीव को रागादि परिणति छूट जाने पर, कर्मबन्धन की परम्परा भी टूट जाती है, उसे नये कर्म का संवारण होता जाता है और पुराने कर्म खिरते जाते हैं;—इसप्रकार समस्त कर्मों से विमुक्त होता हुआ वह दुःख से परिमुक्त होता है। दुःख कैसा है ? —तो कहते हैं कि उबलते हुए पानी जैसा अशांत है।

अंतर्मुखस्वभाव में सुख है और बाह्य विषयों में उबलते हुए पानी जैसा दुःख है... परन्तु भ्रान्ति के वेग में भूले हुए जीवस्वभाव की शान्ति से तो दूर भागते हैं और बाह्य विषयों के दुःख में दौड़कर कूद पड़ते हैं। जिसप्रकार भ्रान्ति के वेग पर चढ़े हुए मृग विपरीतदिशा में दौड़ते हैं। एक ओर मृगों को पकड़ने के लिये किसी पारधी ने जला बिछा रखा हो और किसी दयालु पुरुष को ज्ञात होने पर वह मृगों को दूसरी दिशा में मोड़ने के लिये ललकारे; वहाँ भ्रान्ति के वेग पर चढ़े हुए वे मृग रक्षक को ही भक्षक समझकर उनसे भयभीत हो जाते हैं और विपरीत दिशा में (जहाँ जाल बिछा है) दौड़कर जाल में जा फँसते हैं। उसीप्रकार मोहरूपी भ्रान्ति के वेग पर चढ़े हुए अज्ञानी जीव भी अनादि से विपरीत दिशा में दौड़ रहे हैं और बाह्य विषयों में—राग में सुख मानकर उसमें कूद रहे हैं। ज्ञानी पुरुष करुणापूर्वक उन्हें विषयों से विमुख होकर स्वभाव की ओर जाने के लिये ललकारते हैं कि—अरे प्राणियों! बाह्यविषयों की वृत्ति में सुख नहीं है, उसमें तो आकुलता और अशांति है; इसलिये बाह्यवृत्ति की ओर से लौट पड़ो... लौट पड़ो.. और अंतर में चिदानन्दस्वभाव में सुख है, उस ओर दौड़ो... अंतर्मुख होओ..। वहाँ जो जीव जिज्ञासु हैं, आत्मार्थी हैं, वे तो ज्ञानी संतों की वह

ललकार सुनकर रुक जाते हैं और अंतर में विचार करके उसका विवेक करते हैं कि अहा! यह बात परम सत्य है, यह तो मेरे हित की बात है। परन्तु जो जीव भ्रांति के वेग पर चढ़े हैं, उनकी विचार शक्ति तीव्र मोह से आवृत हो गई है—ऐसे जीव तो हितोपदेशक को भी अहितरूप समझकर 'यह तो हमारा व्यवहार भी छुड़ाते हैं'—इसप्रकार उल्टे भयभीत होकर विपरीत दिशा में (रागादिक में और बाह्य विषयों में) दौड़ते हैं और भवभ्रमण के जाल में फँसकर दु:खी होते हैं। अपने हित का विचार करके जो जीव परभावों से विमुख होकर स्वभावोन्मुख होता है, वह दु:खों से छूटकर परम आनन्द को प्राप्त करता है।

❀ ❀ ❀

इस एक गाथा में आचार्यदेव ने अनेक बातें बतला दी हैं; आत्मार्थिता से लेकर मोक्ष तक की बातें इसमें आ जाती हैं। प्रथम तो, जिसमें कालसहित पाँच अस्तिकाय का वर्णन हो, वही जिन प्रवचन है। मोक्षार्थी जीव उस जिनप्रवचन में कहे हुए द्रव्यों को जानता है; 'केवल आत्मार्थी-गरजवान होकर जानता है,' अर्थात् आत्मा का हित प्राप्त करने की सच्ची अभिलाषापूर्वक जानता है; 'अर्थत: जानता है' अर्थात् मात्र शब्दों की धारणा से नहीं किन्तु उनके भाव-भासनपूर्वक जानता है। समस्त पदार्थों को जानकर, उनमें से अपने आत्मा को पृथक् करके ऐसा निश्चय करता है कि—यह शुद्ध चैतन्यस्वरूप स्ववस्तु ही मैं हूँ।—ऐसा निश्चय करके अपने आत्मा की ओर ढलता है। अपने आत्मा में भी रागादि अशुद्ध पक्ष का आदर न करके, शुद्धस्वरूप का ही आदर करता है। पर्याय में विकार होने पर भी, उसी समय विवेकज्योति के बल से शुद्धस्वरूप में ढलता है और रागादि परिणति को छोड़ता है; निजस्वभाव को छोड़ता नहीं है और परभावों का ग्रहण नहीं करता। राग के समय भेदज्ञान वर्तता है, किन्तु कहीं राग के कारण वह भेदज्ञान नहीं है। राग के साथ ही वर्तते हुए भेदज्ञान के कारण साधक जीव, उस राग में अभेदता न करके, शुद्धस्वभाव में अभेदता करता जाता है और राग को छोड़ता जाता है। रागरूपी चिकनाहट के छूटने पर कर्म भी छूट जाते हैं। जिसप्रकार परमाणु में स्पर्श की चिकनाहट आदि जघन्य हो जाने पर वह परमाणु स्कन्ध से पृथक् हो जाता है; उसीप्रकार स्वभावोन्मुख जीव को रागादि चिकनाहट छूट जाने पर वह जीव कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है।

श्रोता किसलिये श्रवण करता है ?—तो कहते हैं कि आत्मस्वरूप की प्राप्ति करने के हेतु से सुनता है। जैसे आत्मस्वरूप का श्रवण करता है, वैसा ही श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव में लेने का

उद्यम करता है; उद्यमपूर्वक अंतरस्वरूप में युक्त होकर कर्मों के साथ का सम्बन्ध तोड़ देता है। राग-द्वेषपरिणति द्वारा कर्मबंध की परम्परा चलती थी, किन्तु जहाँ अंतर्मुख होकर प्रथम श्रद्धा में और फिर स्थिरता से राग-द्वेषपरिणति को तोड़ दिया, वहाँ पुराने और नये कर्मों के बीच की संधि टूट गई, अर्थात् कर्मों की परम्परा रुक गई और वह जीव उबलते हुए पानी जैसे दु:खों से परिमुक्त हो गया।

स्वभाव के साथ सम्बन्ध जोड़कर, कर्मों के साथ का सम्बन्ध तोड़कर जीव उनकी परम्परा को छेद डालता है। ऐसा नहीं है कि पुराने कर्म, नये कर्मों के बंध का कारण होते ही रहें। यदि जीव, राग-द्वेषपरिणति द्वारा कर्मों के साथ युक्त हो, तभी कर्मों की परम्परा चालू रहती है; किन्तु यदि अपनी परिणति को स्वभाव के साथ युक्त करके राग-द्वेष को छोड़े तो कर्म की परम्परा टूट जाती है। जिसप्रकार परमाणु अपने स्वरूप में एकाकीरूप वर्तता है; उसीप्रकार स्वरूप में एकत्वरूप से युक्त जीव भी राग-द्वेषरहित होता हुआ, कर्मबंधन से रहित एकाकीरूप से—मुक्तरूप से परिणमित होता है।

नियमसार में कहते हैं कि—जड़स्वरूप पुद्गल की स्थिति, पुद्गल में ही है, ऐसा जानकर वे सिद्ध भगवन्त अपने चैतन्यात्मक स्वरूप में क्यों नही रहें? (पुनश्च कहते हैं कि—) यदि परमाणु एक वर्णादिरूप प्रकाशमान निजगुण समूह में है तो उससे मेरी कोई कार्यसिद्धि नहीं है;—इसप्रकार निजहृदय में मानकर, परम सुखपद का अर्थी भव्य समूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाता है। जिसप्रकार परमाणु जघन्य स्नेहरूप परिणमित होने पर स्कंधरूप बंधन से छूट जाता है, उसीप्रकार आत्मा, परमात्मभावना की उग्रता द्वारा एकत्वस्वरूप में परिणमित होता हुआ कर्मबंधन से मुक्त हो जाता है। इसप्रकार एक परमाणु और सिद्धपरमात्मा की भाँति जो जीव अपने एकत्वस्वरूप में वर्तता है, उसे नवीन बंधन नहीं होता और पुराने बँधे हुए कर्म भी छूट जाते हैं; इसलिये वह अशांत-उबलते हुए दु:खों से वह मुक्त हो जाता है। जिसप्रकार ठण्डा जल तो शांत होता है, किन्तु उबलने पर भी उसमें बुलबुले उठते हैं और वह अशांत हो जाता है; उसीप्रकार शांत जल से भरा हुआ चैतन्य सरोवर है; इसमें राग-द्वेष का उबाल आने पर दु:खद बुलबुले उठते हैं, अशांति होती है। चैतन्यस्वभाव की भावना द्वारा राग-द्वेष शांत हो जाने पर जीव उन उबलते हुए अशांत दु:खों से मुक्त होता है और अतीन्द्रिय शांति एवं आनन्द का अनुभव करता है।

—यह पंचास्तिकाय के अवबोध का फल है।

शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मस्वभाव का निर्णय करके जो उसके सन्मुख वर्तता है, वह जीव बंधन रहित होकर, दु:खों से मुक्त होता है और परम आनन्द को प्राप्त करता है। स्वरूपोन्मुखता के बिना अनादि से जीव महादु:खों में उबल रहे हैं; कड़कड़ाते हुए तेल में जिसप्रकार शक्करकंद को उबाला जाता है, उसीप्रकार घोर दु:ख के गर्त में राग-द्वेष-मोह से खदबदा रहे हैं; उन दु:खों से मुक्त होने की रीति आचार्यदेव ने इस १०३ वीं गाथा में बतलाई है।

**जो वन-जंगल में वास करनेवाले महान संत हैं, जो विदेहक्षेत्र में जाकर सीमंधर परमात्मा की वाणी सुन आये हैं, जिनके चारित्र का ज्योति प्रस्फुटित हो गई है और जो चैतन्य के झूले में झूल रहे हैं—ऐसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का यह कथन है। जो जीव आत्मार्थी होकर समझेगा, वह दु:खों से परिमुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त करेगा।**

# लींबडी नगर में
# पंचकल्याणक के समय प्रवचन

**[ वीर सं० २४८४, वैशाख शुक्ला १० से १३ ]**

**पंचकल्याणक-किसके ?**

श्री तीर्थंकर भगवान के पंचकल्याणक चल रहे हैं; भगवान होने से पूर्व भगवान के जीव ने कैसा आत्मभान किया था, उसकी यह बात है। इस शरीर में विद्यमान आत्मा चैतन्यज्योति है, वह जड़ से भिन्न तथा रागादि मलिन भावों से पार चैतन्यस्वरूप है—ऐसे निजस्वभाव का भान और शांति का वेदन करके भगवान सर्वज्ञ परमात्मा हुए। इस अन्तिम अवतार में परमात्मा होने से पूर्व तीसरे भव में उस जीव ने आत्मज्ञानसहित तीर्थंकरनामकर्म का बंध किया था, इसलिये इस अन्तिम अवतार में जब भगवान माता के गर्भ में आये, तब छह महीने पहले से देव रतनवृष्टि करते हैं,

कुमारिका देवियाँ आकर माता की सेवा करती हैं, इन्द्रगण आनन्दोत्सव मनाते हैं। यहाँ प्रतिष्ठा-महोत्सव में आज भगवान के गर्भ कल्याणक का दृश्य हुआ। इसीप्रकार जन्म-दीक्षा-केवलज्ञान और मोक्ष—पाँचों कल्याणक होंगे। देखो, यह तो कल्याणक के दृश्य हैं; कहीं लौकिक नाटक-सिनेमा नहीं हैं किन्तु भगवान के पूर्व जीवन का दृश्य है। इसप्रकार भगवान की पहिचानपूर्वक उनकी स्थापना होगी।

**मुख्य बात—परमात्मदशा का प्रथम उपाय**

मुख्य बात तो यह है कि आत्मा के पूर्णानन्दस्वभाव का भान करके उसे साधते-साधते आत्मा स्वयं परमात्मा होता है। उस परमात्मा का प्रतिबिम्ब यह प्रतिमा है; वह परमात्मा की वीतरागीदशा को सूचित करती है। अनंतकाल से संसार में परिभ्रमण करते हुए जीव ने कभी अपने ज्ञानानन्दस्वरूप की पहिचान नहीं की, तथा पूर्णानन्द को प्राप्त परमात्मा कैसे होते हैं—उसकी सच्ची पहिचान भी कभी नहीं की। परमात्मा का जैसा स्वरूप है, वैसा ही स्वरूप परमार्थतः इस जीव का है—(जिनस्वरूप सो निजस्वरूप); इसलिये जो जिन-सर्वज्ञ-अरहन्त भगवान के यथार्थ स्वरूप को पहिचाने, उसे अपने आत्मस्वरूप की पहिचान हुए बिना नहीं रहती। भगवान का आत्मा ज्ञान-आनन्द से परिपूर्ण है, मेरा स्वभाव भी वैसा ही है। भगवान को राग नहीं है; मुझे व्यक्तदशा में राग है, वह मेरा यथार्थस्वरूप नहीं है; भगवान को पहले संसारदशा में राग था, किन्तु उसे टालकर वे वीतराग हुए; इसलिये राग, वह आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है।—इसप्रकार भगवान जैसे ही अपने आत्मस्वभाव को जानना, सो परमात्मा का प्रथम उपाय है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव 'प्रवचनसार' में कहते हैं कि—

**जो जाणदि अरहन्त दव्वत्तगुणत्त पज्जयत्तेहिं।**
**सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥**

**धर्म के लिये प्रथम क्या करना चाहिये ?**

पहले ऐसा भान करना चाहिये कि मेरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है; वर्तमानदशा में रागादि विकारभाव वर्तते हैं, तथापि वे मेरे स्वभाव से विरुद्ध हैं, मेरा स्वभाव उनसे भिन्न है। विकारी वृत्तियों के साथ मेरा ज्ञान एकमेक नहीं है; यदि एकमेक हो तो वे दूर कैसे होंगी ? वे शुद्धात्मानुभव के बल द्वारा आंशिक रूप से दूर होती हैं; अतः सर्वथा रागादि विकारी वृत्तियाँ दूर होकर पूर्ण वीतरागता और सर्वज्ञता हो सकती है।—इसप्रकार राग होने पर भी, उससे भिन्नता का भान करना,

वह प्रथम धर्म है। अंतर की रुचि और लगन द्वारा आत्मा को समझा जा सकता है। बाह्य में देहादि की क्रिया करना तो आत्मा के हाथ में है ही नहीं, वह तो आत्मा से भिन्न जड़ का कार्य है। आत्मा अपने अंतर में यथार्थ ज्ञान कर सकता है, अथवा अज्ञानभाव से विकार का कर्ता होता है। ज्ञानी तो ज्ञान और विकार को भिन्न-भिन्न जानता हुआ ज्ञायकभाव को ही करता है, रागादि विकार को नहीं करता; किन्तु उन्हें अपने से भिन्न जानकर उनसे विमुख होता है।

अज्ञानी ज्ञानस्वभाव को भूलकर, विकार में तन्मयता मानकर, हित मानकर उसका कर्ता होता है, किन्तु ज्ञान और विकार के अतिरिक्त जड़ की क्रिया में कोई आत्मा कुछ नहीं कर सकता। अज्ञानी भले ही ऐसा माने कि व्यवहार से देहादि की क्रिया मैं कर सकता हूँ, किन्तु वह कहीं देहादि की क्रिया नहीं कर सकता। यहाँ तो अंतर की सूक्ष्म बात है कि ज्ञानानन्दस्वभाव के सन्मुख हुआ धर्मी जीव, रागादि विकार को किंचित् नहीं करता; वह जानता है कि यह रागादि विकारी भाव, जीवस्वभाव नहीं है; वे जीवस्वभाव से भिन्न हैं, इसलिये वे मेरा कार्य नहीं हैं; मैं ज्ञानस्वभावसन्मुख वर्तता हुआ ज्ञानस्वभाव के कार्य को ही करता हूँ।—अंतर्मुख होकर आत्मा के स्वभाव का और विकार का ऐसा भेदज्ञान करना, सो अपूर्व धर्म है।

**भेदज्ञान करने से क्या होता है ?**

अपना चैतन्यस्वभाव ही मुझे उपादेय है; रागादि मुझे उपादेय नहीं है;—इसप्रकार चैतन्यस्वभाव में अंतर्मुख होकर उसे उपादेय करने से अपूर्व आनन्द का वेदन हुआ और उसी क्षण विकार के कर्तृत्व से आत्मा छूट गया। अनादिकालीन अज्ञानभाव के कारण 'मैं कर्ता और विकार मेरा कार्य'—ऐसा मानता था; किन्तु जिस क्षण विकार और स्वभाव का भेदज्ञान हुआ, उसी क्षण विकार के कर्तृत्व से आत्मा विमुख हो गया। इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा आस्रव रुक जाता है और संयमरूप धर्म होता है। भेदज्ञान होने का तथा मिथ्यात्वादि के आस्रव रुकने का एक ही काल है।

**स्वभाव का सामर्थ्य; विभाव की विपरीतता; जड़ का भिन्नत्व**

जहाँ चैतन्यस्वभाव का अपार सामर्थ्य जाना, विभाव को अपने स्वभाव से विपरीत जाना और जड़ को अपने से बिलकुल भिन्न जाना, वहाँ धर्मी की दृष्टि अंतर्स्वभाव की ओर उन्मुख हो गई; स्वभाव का अपार सामर्थ्य जानने से उसी में उपादेयबुद्धि हो गई। विभाव को विपरीत जानने से उसमें हेयबुद्धि हुई; इसलिये उसका कर्तृत्व छूट गया और जड़ को अपने से बिलकुल पृथक् जानने

के कारण देहादि की क्रिया से लाभ-हानि होने की बुद्धि नहीं रही, तथा उस क्रिया में कर्तृत्वबुद्धि नहीं रही।—यह सब एकसाथ ही होता है। ऐसी दशा के बिना कभी धर्म का आरम्भ नहीं होता।

### जिज्ञासु शिष्य भेदज्ञान का स्वरूप पूछता है

धर्म का जिज्ञासु शिष्य पूछता है कि हे स्वामी! भेदज्ञान की उत्पत्ति होने का तथा आस्रवों के अटकने का एक ही काल है या उसमें क्षणभेद है? पहले ज्ञान होता है और फिर आस्रव रुकते हैं—ऐसा है? अथवा ज्ञान हुआ, उसी क्षण आस्रव रुक जाते हैं।

के उत्तर में श्री आचार्यदेव कहते हैं कि—हे शिष्य! सुन! भेदज्ञान होने का और आस्रवों के रुकने का एक ही काल है। जिसप्रकार प्रकाश होते ही अंधकार नष्ट हो जाता है—उसमें कालभेद नहीं है; उसीप्रकार आत्मा में भेदज्ञानरूपी प्रकाश की उत्पत्ति होते ही विकार का कर्तृत्वरूप अज्ञान अंधकार दूर हो जाता है, उसमें कालभेद नहीं है। आत्मा और आस्रवों का भेदज्ञान भी हो और विकार का कर्तृत्व भी (एकत्वबुद्धि) भी रहे—ऐसा कभी नहीं होता। यदि विकार का कर्तृत्व न छूटे तो आत्मा और विकार के बीच भेदज्ञान हुआ ही नहीं है। जिसे यथार्थ भेदज्ञान हुआ है, वह अंतर्मुख होकर ज्ञायकस्वभाव में ही तन्मयरूप से उत्पन्न होता हुआ अपने पवित्र ज्ञानभाव को ही करता है, किन्तु राग में तन्मयरूप से उत्पन्न होता हुआ वह रागादि का कर्ता नहीं होता। इसप्रकार ज्ञान होते ही (उसी क्षण) आत्मा रागादि के कर्तृत्वरूप अज्ञानभाव को छोड़ देता है; इसलिये वह अज्ञानजनित आस्रवों से निवृत्त हो जाता है और सम्यग्दर्शनादि आत्मधर्म में प्रवृत्त होता है—यह धर्म की विधि है।

### भगवान का जन्मकल्याणक और इन्द्र का उत्साह

आज भगवान के जन्मकल्याणक का उत्सव हुआ। इस अवतार में भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञपरमात्मा हुए और तीर्थंकररूप से अनेक जीवों के उद्धार का निमित्त बन गये। यहाँ आदिनाथ भगवान के कल्याणक हो रहे हैं। इस भरतक्षेत्र में असंख्य वर्षों से मोक्ष का द्वार बन्द था, उसे आदिनाभ भगवान ने खोला... असंख्य वर्षों से इस भरतक्षेत्र में मुनिपना नहीं था, उसका प्रारम्भ भी भगवान आदिनाथ ने किया। जब भगवान का जन्म हुआ, तब इन्द्र उन्हें ऐरावत हाथी पर बिठाकर सुमेरुपर्वत पर ले गये और वहाँ जन्माभिषेक किया... फिर भक्तिपूर्वक तांडव नृत्य किया। इन्द्र भी धर्मात्मा हैं, एकावतारी हैं। भगवान तो अभी बालक हैं; तथापि उनके समक्ष इन्द्र बालकों की भाँति नाचने लगते हैं। धर्मात्मा को ऐसा भक्ति का भाव आये बिना नहीं रहता। यद्यपि उस भक्ति

का भाव भी शुभभाव है और शुभभाव, पुण्यास्रव का कारण है। आत्मा का चिदानन्दस्वभाव उस शुभभाव से पार है। इन्द्र को भी अपने ऐसे स्वभाव का भान है तथा जिनका जन्मकल्याणक मनाया जा रहा है, उन भगवान को भी अपने ऐसे स्वभाव का भान है; किन्तु भगवान इस भव में निजस्वरूप की पूर्ण आराधना करके सर्वज्ञ परमात्मा होनेवाले हैं, इसलिये मोक्षमार्ग के प्रति तीव्र उत्साह के कारण इन्द्र भी तीर्थंकर के निकट अत्यन्त भक्ति से बालक की भांति थिरक-थिरक कर नाच उठते हैं। अहो नाथ! धन्य है आपका अवतार! आपके निमित्त से अनेक जीव मोक्षमार्ग की आराधना करके इस भव समुद्र से पार होंगे।—ऐसे अनेक प्रकार से भगवान की स्तुति करते हैं और जन्मकल्याणक महोत्सव मनाते हैं। इसप्रकार भगवान के जन्मकल्याणक में भी भगवान की पहिचान तथा चैतन्य की आराधना का लक्ष तो साथ साथ है ही। अरे, भगवान के जन्मकल्याणक के समय तो तीन लोक में प्रकाश फैल जाता है और तीर्थंकर के जन्म की खबर पड़ने पर विचारदशा की गहराई में उतर जाने से नरक में भी कोई-कोई जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेते हैं।

# दीक्षावन में वैराग्य-प्रवचन

देखो, अभी यहाँ आदिनाथ भगवान की दीक्षा का दृश्य दिखलाया गया। जिस दिन भगवान का जन्म हुआ था, ठीक उसी दिन (-चैत्र कृष्णा नवमी) भगवान ने दीक्षा ग्रहण की। प्रातःकाल इन्द्र अनेक देव-देवियों सहित नृत्य-गानपूर्वक भगवान की स्तुति कर रहा था, वहाँ नृत्य करते-करते 'नीलांजना' नामक देवी की आयु पूर्ण हो गई और संसार की ऐसी क्षणभंगुरता देखकर भगवान वैरागय को प्राप्त हुए। लौकान्तिक देवों ने आकर भगवान की स्तुति की और भगवान वन में पधारे... वन में अभी हाल भगवान ने दीक्षा ग्रहण की और चारित्रदशा प्रगट करके मुनि हुए।—यह दृश्य दिखलाया गया है।

### जैनधर्म में मुनिदशा का स्वरूप

जैनधर्म में यथार्थ मुनिदशा कैसी होती है? आत्मा के ज्ञान उपरान्त चैतन्य में विशेष लीनता होने पर उपयोग बारम्बार निर्विकल्परूप से अंतर में स्थिर हो जाता है; चैतन्य पिण्ड, राग से पृथक्

अनुभव में आता है; तीन कषायों का नाश हो जाता है—ऐसी अंतरंग दशापूर्वक बाह्य में भी बिलकुल निर्ग्रन्थदशा हो जाती है। जैनशासन में त्रिकाल ऐसी ही मुनिदशा होती है। वस्त्र में एक लँगोट भी हो तो वहाँ आत्मज्ञान हो सकता है किन्तु मुनिदशा नहीं हो सकती। आत्मज्ञान के पश्चात् भी जबतक ऐसी मुनिदशा प्रगट न करे तबतक मोक्ष नहीं होता। अष्टपाहुड़ में कहते हैं कि तीर्थंकरों को भी चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता। तीर्थंकर का तो उसी भव में मोक्ष जाना निश्चित हो गया है, तथापि वे भी जब चारित्रदशा प्रगट करके रत्नत्रय की आराधना पूर्ण करते हैं, तभी मोक्ष होता है; क्योंकि 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की एकता वह मोक्षमार्ग है; चारित्र के बिना मोक्षमार्ग पूर्ण नहीं होता।

**चारित्र में चैतन्य के ध्यान की मस्ती है।**

धन्य वह चारित्र! कौन-सा चारित्र? लोग बाह्य क्रिया में चारित्र मानते हैं, वह चारित्र नहीं है, किन्तु अंतर में चैतन्यस्वभाव के ध्यान द्वारा अपार वीतरागता हो जाये, वह चारित्र है; उस चारित्र में तो आनन्द की मस्ती है—उल्लास है। वहाँ चैतन्य में लीनता की उग्रता के कारण देह के प्रति भी इतनी अधिक उदासीन वृत्ति हो गई है कि वस्त्रादि द्वारा देह ढँकने की वृत्ति ही नहीं उठती। अंतर्मुख होकर जहाँ चैतन्यस्वभाव का परिग्रह किया, वहाँ बाह्य में वस्त्रादि का परिग्रह एकदम छूट जाता है। भगवान ने ऐसी मुनिदशा धारण की थी; जैनशासन में ऐसी ही मुनिदशा होती है। 'णमो लोए सव्व साहूणं' कहकर लोक में विद्यमान जिन सर्व साधुओं को नमस्कार किया है, वह ऐसी ही दशावाले साधुओं की बात है। इसके अतिरिक्त आत्मा के भानरहित या परिग्रह की पोटली रखनेवाला कोई साधु 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में नहीं आता।

**महा पुरुषों का पंथ**

अरे! आजकल तो मुनिदशा की पहिचान भी जीवों को दुर्लभ हो गई है। धर्मी जीव तो उस मुनिदशा की भावना भाते हैं कि—

**अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे?**
**क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रन्थ जो,**
**सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने,**
**विचरशुं कब महत् पुरुषने पंथ जो...**

देखो, यह तीर्थंकरादि महान पुरुषों का पंथ! पहले आत्मभान करके, फिर चैतन्य के ध्यान द्वारा चारित्रदशा प्रगट करके वीतरागी आनन्द के झूले में झूलते-झूलते वे महापुरुष, मुक्ति को प्राप्त

हुए... महा पुरुषों के ऐसे मुक्तिपंथ में मैं भी चारित्रदशा प्रगट करके कब विचरूँगा ?—ऐसी भावना धर्मात्मा भाता है।

कैसी चारित्रदशा ?—तो कहते हैं:—

**सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी,**
**मात्र देह से संयम हेतु होय जो;**
**अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहीं**
**देहे पण किंचित् मूर्छा नव होय जो...**

अशरीरी-सिद्धदशा को साधने के लिये जहाँ चैतन्य के अनुभव में पहुँचा, वहाँ शरीर के प्रति मूर्च्छा कैसी ? जिसे वस्त्रादि धारण करने की वृत्ति उठती है, उसे तो शरीर के प्रति मूर्च्छा है, उसे मुनिदशा नहीं होती। अहा, मोक्ष की साक्षात् साधक ऐसी मुनिदशा तो सिंह वृत्ति है; उसमें ऐसी कायरता नहीं है कि शरीर की रक्षा के हेतु या उसे ढँकने के लिये वस्त्रादि अंगीकार करने का भाव आये! मुनि की दशा तो अंतर में तथा बाहर—दोनों प्रकार से निर्ग्रन्थ होती है—ऐसा ही अनादि-अनंत स्वभाव है।

## अप्रमाद और अप्रतिबद्ध मुनिदशा

दिन-रात अंतर के ध्यान द्वारा चैतन्य-कपाट खोलने का उद्यम करते हुए मुनिवरों को प्रमाद का अवकाश कहाँ से होगा ? चैतन्य में प्रतिबद्ध हुए मुनिवर अन्य किसी प्रतिबंध से नहीं बँधते; चैतन्य के खीले से बँधी हुई उनकी स्थिति-परिणति-बाह्य में जहाँ-तहाँ नहीं भटकती, इसलिये किसी प्रतिबंध में नहीं अटकती।

अनेक बार भोजन करे, सारी रात सोता रहे अथवा दिन में सोये - यह तो प्रमाद और विषयासक्ति है; मुनियों को ऐसा प्रमाद या विषयासक्ति कभी नहीं होती। वे मात्र एक ही बार (खड़े-खड़े या हाथ में ही) भोजन करते हैं और निद्रा भी मात्र पिछली रात में अल्पकाल ही करते हैं। इसलिये कहते हैं कि—

**पंच विषयमां रागद्वेष विरहीतता,**
**पंच प्रमादे न मले मननो क्षोभ जो;**
**द्रव्य-क्षेत्र के काल-भाव प्रतिबंध वण,**
**विचरवुं उदयाधीन पण वीतलोभ जो...**

देखो, यह मोक्ष के कारणरूप मुनिदशा! ऐसी मुनिदशा होने से पूर्व भगवान आदिनाथ राजपाट में थे; उनके दो रानियाँ भी थीं और भरत-बाहुबलि आदि सौ पुत्र भी थे; तथापि उससमय आत्मा का भान वर्तता था। भगवान जानते थे कि—हम अपने इस राग के कारण संसार में रहे हैं; किसी पर के कारण या पर में स्वप्न में भी सुख मानकर हम संसार में नहीं रहे। जब हम इस राज को छोड़कर चल देंगे, तब हमें कोई रोकनेवाला नहीं है। हम इस राग के कारण रुके हैं; जब यह राग छेदकर चारित्रदशा अंगीकार करेंगे, तभी केवलज्ञान प्राप्त होगा। आज भगवान ने राग छेदकर चारित्रदशा अंगीकार की।

अहा! जहाँ आत्मा मोह को छेदकर चल दिया और मुनि होकर अंतर के अनुभव में लीन हुआ, वहाँ फिर संसार में क्या हो रहा है, उसकी चिन्ता नहीं होती। इन्द्र से भी अधिक ऋद्धि चरणों में लोट रही हो, तथापि उसकी आकांक्षा नहीं होती। क्योंकि—

**रजकण के रिद्धि वैमानिक देवनी,**
**सर्वे मान्यां पुद्गल अेक स्वभाव जो...**

**'केवलज्ञान प्राप्त करेंगे.. करेंगे.. करेंगे!'**

भगवान को पूर्ण नि:शंकता थी कि मोह को छेदकर हम मुनि हुए... अब चैतन्य में एकाग्र होकर इसी भव में केवलज्ञान प्राप्त करेंगे... करेंगे... करेंगे.. (-हजारों श्रोताजनों ने बड़े उत्साहपूर्वक यह बात झेली थी।)

गुरुदेव भावभीनी भावना से कहते हैं कि—

**अेह परम पद प्राप्तिनुं कर्युं ध्यान में**
**गजा वगर ने हाल मनोरथ रूप जो;**
**तो पण निश्चय राजचन्द्र मनने रह्यो,**
**प्रभु आज्ञाअे थशुं ते ज स्वरूप जो...**
**अपूर्व अवसर अेवो...**

लींवडी नगर में पंचकल्याणक के समय, भगवान की दीक्षा के पश्चात् दीक्षावन में पूज्य गुरुदेव का यह प्रवचन चल रहा है; गुरुदेव अद्भुत वैराग्यपूर्वक चारित्रदशा का महिमा का स्रोत बहा रहे हैं:—

**अहा चारित्र! धन्य वह दशा!**

[—शेष अगले अंक में]

# बंधन टूटकर

## आनन्द का वेदन किसप्रकार होता है ?

[ ध्रांगध्रा शहर में पूज्य गुरुदेव का प्रवचन ]

( वीर सं० २४८४ वैशाख कृष्णा १२ )

विनयवंत शिष्य, गुरु के पास जाकर पूछता है कि प्रभो! मैं बन्धन में हूँ, मैं दु:खी हूँ; उस बंधन और दु:ख से छूटकर मुझे आत्मा की शांति कैसी होगी ? आनन्द का वेदन किस प्रकार होगा ? आत्मा को बंधन से छुड़ाकर आनन्दानुभव करने का साधन क्या है ? हे नाथ! मुझे ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मेरा आत्मा बंधन के दु:ख से छूट जाये... और मुझे अपने आनन्द का वेदन हो।

देखो, यह पात्र शिष्य की जिज्ञासा! शिष्य, सुख और उसके उपाय को स्वीकार करता है, तथा अपराध से दु:ख और बंधन है, उसे भी स्वीकार करता है; फिर उस बंधन से छूटकर सुख प्राप्त करने की आकांक्षा से उसका उपाय पूछता है कि—प्रभो! मेरा आत्मा बंधन से किसप्रकार छूटेगा ? मुझे आनन्द का अनुभव कैसे होगा ? इस राग के वेदन में मुझे अपने आनन्द का भास नहीं होगा; मुझे रागरहित अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होना चाहिये। प्रभो! उस अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन का साधन बतलाइये।

ऐसा पूछनेवाले जिज्ञासु शिष्य को बंधन से छूटने का उपाय दर्शाते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि—

**जीवो बधश्च तथा छिद्येते स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्याम्।**
**प्रज्ञाछेदनकेन तु छिन्नौ नानात्वमापन्नौ ॥२९४॥**

(समयसार, गाथा २९४)

आत्मा और बंध दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं; उनके भिन्न-भिन्न लक्षणों को जानकर, भेदज्ञानयपी छैनी द्वारा छेदने से वे दोनों पृथक् हो जाते हैं; अर्थात् आत्मा, बंधन से छूट जाता है और उसे अपने आनन्द का वेदन होता है। इसप्रकार **भेदज्ञानरूपी भगवती प्रज्ञा ही बंधन से छूटकर आनन्द के अनुभव का उपाय है।**

हे शिष्य! आत्मा और रागादि भाव मानों एकमेक हो गये हों—ऐसा अज्ञान के कारण लगता है; किन्तु वास्तव में वे एक नहीं हैं; लक्षण-भेद से वे दोनों पृथक् हैं। आत्मा तो सदैव चेतक

है—चेतनेवाला है, और रागादिभाव चेतक नहीं हैं, किन्तु चेतक द्वारा चेतानेयोग्य (चेत्य) हैं। इसप्रकार आत्मा चैतन्य लक्षणवाला है और रागादिक तो बंध का लक्षण है; वह कहीं आत्मा का लक्षण नहीं है, क्योंकि रागादिक के बिना ही चैतन्यस्वरूप आत्मा का अनुभव होता है। इसप्रकार सूक्ष्म विचार द्वारा दोनों की भिन्नता जानकर उन्हें पृथक् किया जा सकता है। हे शिष्य! हम अपने अनुभव से कहते हैं कि आत्मा और रागादि को भिन्न-भिन्न जानकर, उनकी संधि के बीच सावधानीपूर्वक प्रज्ञाछैनी को पटकने से वे पृथक् हो जाते हैं; **वह भगवती प्रज्ञा बंधन को छेद डालती है और रागरहित अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव कराती है। इसलिये हे शिष्य! तू भगवती प्रज्ञा का अर्थात् भेदज्ञान का बारम्बर अभ्यास कर।**

जिसे आत्महित की अभिलाषा है और उसकी प्राप्ति के उपाय की लालसापूर्वक श्रीगुरु के निकट आया है—ऐसे आत्मार्थी को यह उपदेश दिया जाता है। जिसप्रकार स्फटिक का स्वभाव स्वच्छ है; उसी प्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा भी स्वच्छ वीतरागस्वभावी है; उस स्वभाव की जिसे गरज है, जिज्ञासा है, उसे श्री गुरु समझाते हैं। शिष्य को भी इतना विश्वास है कि यह संत-गुरु स्वयं बंधन से छूटने का उपाय जानकर वह उपाय कर रहे हैं और मुझे भी बंधन से छूटने का उपाय बतलायेंगे, इसलिये इसमें गुरु आदि कैसे होते हैं, उनकी पहिचान भी आ गई।

**देव कैसे होते हैं ?**—तो कहते हैं कि सर्व बंधन से मुक्त; जिन्हें किसी प्रकार का राग का बंधन नहीं होता; वीतराग होते हैं, सर्वज्ञ होते हैं और पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं।

**गुरु कैसे होते हैं ?**—जिन्होंने भेदज्ञान द्वारा आत्मा और रागादि को भिन्न-भिन्न जाना हो, रागरहित आनन्द का अनुभव किया हो, और जो प्रज्ञाछैनी द्वारा बंधन को छेदकर सर्वज्ञपद प्राप्ति का परमपुरुषार्थ कर रहे हों।

**शास्त्र कैसे होते हैं ?—**आत्मा को बंधन से छुटकारे का उपाय दर्शानेवाली—ऐसे देव-गुरु की वाणी, सो शास्त्र है। वे शास्त्र, भेदज्ञान द्वारा सर्व ओर से राग को छेदना बतलाते हैं, कहीं भी राग से लाभ होना नहीं बतलाते।

ऐसे देव-गुरु-शास्त्र को पहिचानकर, उनके बतलाये हुए मोक्ष के उपाय का भेदज्ञान द्वारा साधना ही मोक्ष का पंथ है; वही बंधन से छूटने तथा आनन्द के अनुभव का उपाय है।

—ऐसा उपाय कौन करता है ?—जिसे राग में और बाह्य विषयों में आनन्द भासित न होता हो किन्तु दुःख भासित होता हो, त्रास लगता हो और उनसे छूटकर रागरहित आनन्द को चाहता हो, वह जीव ऐसा उपाय करता है।

ऐसा शिष्य कहता है कि हे नाथ! हे स्वामी! मेरा एक ही प्रयोजन है कि किसी भी प्रकार मेरा आत्मा इस बंधन से छूटकर आनन्द प्राप्त करे; इसलिये आप मुझे उसका उपाय बतलायें; अन्य कोई प्रयोजन मेरा नहीं है। 'काम एक आत्मार्थ का, अन्य नहीं मन रोग'—हे प्रभो! मैं अपने आत्मार्थ को साध लूँ, यह एक ही मेरी अभिलाषा है; अन्य कोई अभिलाषा मेरे मन में नहीं है। मैं किसी भी भव की इच्छा नहीं करता; पुण्य की इच्छा नहीं करता, स्वर्ग के वैभव की इच्छा नहीं करता, संसार के किसी पद की मुझे इच्छा नहीं है, एकमात्र आत्मार्थ की ही इच्छा है; मैं आत्मार्थी होकर अपने मोक्ष की साधना करना चाहता हूँ, इसलिये कृपा करके मुझे उसका उपाय बतलाइये।

इसप्रकार शिष्य आत्मार्थी होकर मोक्ष के उपाय की ही बात पूछता है। **जो जीव सच्चा आत्मार्थी होकर मोक्ष के उपाय को ढूँढ़े, उसके अंतर में मोक्ष का उपाय परिणमित हुए बिना नहीं रहता, उसे मोक्ष का पंथ मिलता ही है।**

**प्रथम तो जीव को अपने अंतर में ही ऐसा भासित होना चाहिये कि मुझमें यह जो राग का वेदन है, वह दुःख है—अशांति है, मेरे स्वभाव का ऐसा वेदन नहीं हो सकता; मेरे स्वभाव का वेदन तो शांत-आनन्दरूप होता है। मेरा आत्मा तो आनन्द-स्वभावी है; इसलिये उसका वेदन भी आनन्दरूप ही होता है।**—इसप्रकार जिसे राग में दुःख भासित हो और स्वभाव का आनन्द लक्ष में आये, वह जीव, राग और स्वभाव का भेदज्ञान करके अपने स्वाभाविक आनन्द का अनुभव करता है। बंधन से छूटकर मोक्ष प्राप्त करने का यह एक ही पंथ है—

**''मोक्ष कह्या निज शुद्धता, ते पामे ते पंथ;**
**समजाव्यो संक्षेपमां, सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।''**

(—आत्मसिद्धि)

जिसप्रकार लैंडी पीपल में चौंसठ पुटी चरपराहट की शक्ति है, उसी में से वह प्रगट होती है; उसीप्रकार आत्मा में पूर्ण आनन्द और सर्वज्ञता प्रगट हो, ऐसा स्वभाव है; उस स्वभाव की श्रद्धा तथा एकाग्रता द्वारा उसी में से वह प्रगट होती है। पूर्ण ज्ञान और आनन्द प्रगट हो जाने का नाम मोक्ष है, और स्वभाव की श्रद्धा तथा एकाग्रता, वह मोक्ष का पन्थ है। ऐसे मोक्षपन्थ की आराधना द्वारा जीव, बंधन से छूटकर अपने अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करता है।

इसप्रकार आचार्यदेव ने आत्मार्थी शिष्य को बंधन से छूटने तथा आनन्द के वेदन का उपाय बतलाया।

## इक्कीसवें तीर्थंकर

# श्री नमिनाथ का वैराग्य-प्रसंग

सोनगढ़ के भव्य जिनमन्दिर की दीवारों पर अंकित वैराग्य एवं भक्ति से भरपूर ऐतिहासिक चित्रों का परिचय 'आत्मधर्म' में क्रमशः दिया जा रहा है। अभी तक (१) शांतिनाथ भगवान का पूर्वभव, (२) सम्मेदशिखर की यात्रा, (३) भगवान महावीर की बाल्यावस्था के दो प्रसंग और (४) मथुरा में सप्तर्षि भगवन्त—इन चार चित्रों का परिचय दिया जा चुका है। पाँचवाँ चित्र है।—'इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नमिनाथ का वैराग्य-प्रसंग'—उसका परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

इस जम्बूद्वीप के बंग देश में मिथिला नाम की नगरी थी; वहाँ भगवान ऋषभदेव के वंशज विजय महाराजा राज्य करते थे। उनकी महारानी वप्पिलादेवी को एकबार सोलह मंगल स्वप्न आये ओर होनहार नमिनाथ तीर्थंकर अपराजित विमान से च्यवकर उनकी कूख में अवतरित हुए। अषाढ़ कृष्णा दसवीं के दिन भगवान का जन्म होने पर इन्द्रों ने आकर इक्कीसवें तीर्थंकर का जन्मकल्याणक उत्सव मनाया। भगवान नमिनाथ की आयु दस हजार वर्ष की थी। कुमारकाल के ढाई हजार वर्ष बाद उनका राज्याभिषेक हुआ... राज्य करते-करते पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो गये।

वर्षा ऋतु का आगमन हुआ... आकाश विविधरंगी मेघों से आच्छादित हो गया... वर्षा ऋतु की छटा का अवलोकन करने के लिये नमिनाथ भगवान हाथी पर बैठकर वन विहार के लिये निकले। अनेक राजकुमारों के साथ भगवान नमिनाथ वर्षा ऋतु से सुशोभित वनश्री को निहार रहे थे... इतने में अचानक आकाशमार्ग से दो देव आये और हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए भगवान की स्तुति करने लगे... वे दोनों देव भगवान के पास किसलिये आये थे?—यह जानने के लिये अपनी कथा को कुछ देर के लिये महाविदेह में ले जायें।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र में वत्सकावती नामक देश है; उसकी सुसीमा नगरी में अपराजित विमान से आकर अपराजित नाम के तीर्थंकर ने जन्म धारण किया है। उन्हें केवलज्ञान होने पर उनकी पूजा के लिये इन्द्रादि देव भी आये थे। उनकी सभा में प्रश्न हुआ कि हे नाथ! इस समय भरतक्षेत्र में भी कोई तीर्थंकर हैं? तब सर्वदर्शी अपराजित भगवान ने उत्तर दिया कि—हाँ,

इस समय भरतक्षेत्र के बंगदेश की मिथिलानगरी में नमिनाथ स्वामी अपराजित विमान से अवतरित हुए हैं और वे पुण्योदय से इक्कीसवें तीर्थंकर होनेवाले हैं... इस समय वे वन विहार करते हुए वर्षाऋतु की शोभा का निरीक्षण कर रहे हैं तथा देवों द्वारा दी गई वस्तुओं का उपभोग कर रहे हैं... अर्थात् अभी वे गृहस्थाश्रम में हैं। विदेहक्षेत्र में श्री अपराजित तीर्थंकर के श्रीमुख से जब यह वृत्तांत निकला, उसी समय दो देव भी वहाँ उनकी पूजा के लिये आये थे। भगवान के श्रीमुख से यह बात सुनकर आश्चर्य एवं भक्तिसहित वे नमिनाथ तीर्थंकर के दर्शन करने के लिये भरतक्षेत्र में आये।

दोनों देवों ने आकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमिनाथ भगवान के दर्शन एवं स्तुति की... तत्पश्चात् अतिप्रसन्नता से उन्होंने कहा कि—हे नाथ! हम दोनों पूर्व जन्म में धातकीखण्ड नामक द्वीप में थे; वहाँ से तपश्चरण करके सौधर्मस्वर्ग में देव हुए हैं... देव होने के पश्चात् दूसरे ही दिन हम विदेहक्षेत्र में अपराजित तीर्थंकर के केवल कल्याणक की पूजा करने आये.. वहाँ भगवान की वाणी में आपकी कथा सुनकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई और कौतुकवश आपके दर्शन करने चले आये.. होनहार तीर्थंकर ऐसे आपके साक्षात् दर्शन से हमें अपार आनन्द हो रहा है। ऐसा कहकर उन देवों ने पुनः पुनः भगवान की स्तुति की।

जो निकट भविष्य में ही केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले हैं—ऐसे नमिनाथ भगवान देवों की कही हुई बात को हृदय में धारण करके नगर में लौटे और विदेहक्षेत्र के अपराजित तीर्थंकर की बात, उनके साथ अपना पूर्वभव सम्बन्ध आदि का स्मरण करके बारम्बार संसार से विरक्त भावना का चिंतवन करने लगे कि—अहा! पूर्व भव में अपराजित तीर्थंकर और मैं—दोनों अपराजित विमान में साथ थे... इस जीव ने अपने को अपने ही द्वारा बंधन में जकड़कर अनादिकाल से शरीररूपी कारागृह में डाल रखा है... और जिसप्रकार पिंजरे में बन्द पापी पंछी दुःखी होता है तथा गजस्तम्भ में बँधा हुआ हाथी दुःखी होता है, उसीप्रकार यह आत्मा निरन्तर दुःखी हो रहा है... संसार भ्रमण में यद्यपि वह अनेक प्रकार के कष्ट भोगता है, तथापि उन दुःखों में राग करता है। विष्टा के कीड़े की भाँति इन्द्रियविषयों में आसक्त रहता हुआ अपवित्र पदार्थों में तृष्णा करता है। यद्यपि यह प्राणी मृत्यु से डरता है, तथापि उसी की ओर दौड़ता है; दुःखों से मुक्त होना चाहता है, तथापि उनका संचय करता है। अरे! महादुःख की बात है कि आर्त्त-रौद्रध्यान द्वारा उत्पन्न हुई तीव्र तृष्णा से जीवों की बुद्धि विपरीत हो गई है और वे पाप के फल से दुःखी होते हुए विश्राम लिये बिना चारगति में भव भ्रमण कर रहे हैं। अरे, अभीष्ट अर्थ का घात करनेवाली इस अनादिकालीन मूढ़ता

को धिक्कार है... वैराग्यपूर्वक नमिनाथ भगवान विचार करते हैं कि—अरे, ऐसा संसार क्षणमात्र भी इच्छनीय नहीं है। इस समस्त संसार के ओर की वृत्ति छोड़कर अब हम शुद्ध रत्नत्रय को अंगीकार करेंगे और उसके द्वारा अपनी आत्मसाधना को पूर्ण करेंगे।

—इसप्रकार वैराग्य आने पर भगवान नमिनाथ का चित्त भोग और राग से अत्यन्त विरक्त हो गया तथा वे दीक्षा ग्रहण करने को तैयार हुए... उसी समय देवों में वीतराग ऐसे सारस्वत आदि लौकान्तिक देवों ने आकर भगवान की स्तुति पूर्वक उनके वैराग्य का अनुमोदन किया... भगवान ने सुप्रभ नाम के पुत्र को राज्य सौंप दिया... तत्पश्चात् देवों ने दीक्षाकल्याणक सम्बन्धी अभिषेक किया और उत्तरकुरु नाम की सुन्दर पालकी में बैठकर भगवान चैत्रवन नामक उद्यान में आये.. वहाँ अषाढ़ कृष्णा दसवीं के दिन (-ठीक जन्मकल्याणक के दिन) सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करके नमिनाथ भगवान स्वयं दीक्षित हुए... भगवान के साथ साथ अन्य एक हजार राजाओं ने भी संयम दीक्षा अंगीकार की। उसी समय आत्मध्यान में एकाग्र होने पर भगवान को मन:पर्ययज्ञान प्रगट हुआ।

मुनिदशा में नौ वर्ष व्यतीत होने के बाद मगशिर शुक्ला एकादशी के दिन दीक्षावन में ही ध्यानस्थ भगवान को केवलज्ञान हुआ और देवों ने केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव मनाया। भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हुए भगवान नमिनाथ तीर्थंकर अनेक देशों में विचरे... जब एक महीने की आयु शेष रही तब वे सम्मेदशिखर पर आकर विराजमान हुए और वहाँ एक हजार मुनिवरों के साथ प्रतिमायोग धारण करके वैशाख कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि को मोक्ष पधारे।—ऐसे श्री नमिनाथ तीर्थंकर हमें भी मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करें। (-महापुराण के आधार से)

**********

# भगवान का सच्चा भक्त

भगवान की सच्ची भक्ति करनेवाला जीव वही करना चाहता है जो भगवान ने किया। "हे भगवान सर्वज्ञदेव! आपने अपने आत्मा को ज्ञायकस्वभावी जानकर पर का ममत्व छोड़ दिया और आप परमात्मा हुए... मेरा आत्मा भी आप जैसा ज्ञायकस्वभावी है"—इसप्रकार जो जीव भगवान जैसे अपने आत्मा को पहिचाने, वही भगवान का सच्चा भक्त है, उसी ने भगवान को पहिचानकर भगवान की सच्ची भक्ति की है।

विहार समाचार—

### वडिया, जेतपुर और गोंडल शहर में

# जिनबिम्ब वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव

## तथा

# राजकोट में पूज्य गुरुदेव का भव्य स्वागत

सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रताप से जिनशासन की विविधप्रकार प्रभावना हो रही है। अनेक स्थानों पर दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण तथा वेदी प्रतिष्ठाएँ हो चुकी हैं। गत माघ महीने में वडिया जेतपुर और गोंडल शहर में पूज्य गुरुदेव की मंगल-छाया में नये जिन मंदिरों में वेदी प्रतिष्ठा-महोत्सव मनाये गये। माघ शुक्ला ४-५-६ को वडिया में, माघ शुक्ला ९-१०-११ को जेतपुर में और माघ शुक्ला १२-१३-१४ को गोंडल में वेदी-प्रतिष्ठा का कार्यक्रम था। जप-प्रारम्भ, मण्डप में श्री जिनेन्द्रदेव की स्थापना, ध्वजारोपण, बीस विहरमान तीर्थंकर मण्डल विधान, इन्द्र-प्रतिष्ठा, आचार्यअनुज्ञा, यागमण्डल विधान, जलयात्रा, वेदीशुद्धि, कलशध्वज आदि की शुद्धि तथा पूज्य गुरुदेव के शुभहस्त से जिनबिम्ब स्थापना, शांतियज्ञ और रथयात्रा आदि विविध कार्यक्रम तीनों शहरों में हुए थे। उनमें श्वेताम्बर जैन भाइयों का भी अच्छा सहयोग मिला था।

प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधि-विधान पूज्य बेन श्री बेन की देखरेख में विद्वान भाई श्री हिंमतलालभाई तथा सोनगढ़ के ब्रह्मचारियों ने कराया था। वडिया के श्री उत्तमचन्दजी आदि मुमुक्षु सज्जनों ने प्रतिष्ठा महोत्सव में अति उल्लास पूर्वक भाग लिया था और एक वृहद प्रीतिभोज का आयोजन किया था। वडिया के जिन मन्दिर में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान हैं। मन्दिर सुन्दर है।

जेतपुर में श्री जटुभाई कागदी देसाई बन्धु तथा, सेठ भूरालालजी के सुपुत्र आदि सज्जनों ने खूब उत्साह प्रदर्शित किया था। वहाँ भी विशाल आयोजन सहित बृहद प्रीतिभोज दिया गया था। अन्तिम रथयात्रा में हाथियों के आ जाने से रथयात्रा का दृश्य भव्य एवं दर्शनीय था। जेतपुर का जिन मन्दिर सुन्दर है; मूलनायक भगवान श्रेयांसनाथ हैं।

गोंडल शहर में सेठ श्री वछराजभाई तथा अन्य सज्जनों ने प्रतिष्ठा-महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया था; वहाँ भी रथयात्रा में सुसज्जित हाथी आ जाने से रथयात्रा का दृश्य सुन्दर लग रहा था।

गोंडल का शिखरवाला मन्दिर अत्यन्त भव्य है। मूलनायक श्री शांतिनाथ भगवान हैं; तदुपरान्त श्री सीमंधर भगवान तथा अनंतनाथ भगवान भी विराज रहे हैं। भगवान की प्रतिष्ठा का महोत्सव आनन्दोल्लास सहित मनाने के लिये वडिया, जेतपुर और गोंडल शहर के मुमुक्षुओं को धन्यवाद!

इन तीनों शहरों से श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र निकट ही है; इसलिये गिरनार पर्वत के ऊँचे शिखर दृष्टिगोचर होते हैं; उन्हें देखकर भक्तजन हर्षित होते थे। पूज्य गुरुदेव भी विहार के समय मार्ग में बारम्बार श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र के दर्शन करते थे। जगह-जगह से गिरनार पर्वत इस प्रकार दिखाई देता था मानों उसकी प्रदक्षिणा कर रहे हों!

तीनों शहरों के प्रतिष्ठा-महोत्सव समाप्त करके पूज्य गुरुदेव ने फाल्गुन कृष्णा दूज, रविवार के दिन राजकोट शहर में प्रवेश किया.... जहाँ गुरुदेव का उल्लासपूर्वक भव्य स्वागत किया गया। स्वागत-समारोह में हजारों नर-नारी सम्मिलित थे। स्वागत के पश्चात् स्व० भाई श्री नौतमभाई की स्मृति में समयसारजी शास्त्र में ४७ नयों पर प्रवचनवाला—''आत्मप्रसिद्धि'' नामक गुजराती पुस्तक का प्रकाशन हुआ था। पूज्य गुरुदेव राजकोट में करीब १ महीना रहे थे। उन्हीं दिनों राजकोट के जिन मन्दिर की प्रतिष्ठा के दस वर्ष समाप्त होने से एक भव्य महोत्सव फाल्गुन शुक्ला २ से फाल्गुन शुक्ला १२ तक मनाया गया था। राजकोट का जिन मन्दिर दर्शनीय है और मूल नायक श्री सीमन्धर भगवान विराजमान हैं। पूज्य गुरुदेव राजकोट से विहार करके गत चैत्र कृष्णा ३, बुधवार ता० १६-३-६० के दिन सोनगढ़ पहुँच चुके हैं और वहाँ सुख शांति में विराजमान हैं। सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी का जन्म जयंति उत्सव इस साल में वैशाख सु० २ उमराला गाँव जो जन्मभूमि है—मनाया जायेगा। वहाँ नया जिन मन्दिर भी है-स्वाध्याय मन्दिर भी है वहाँ उत्सव मनाने के लिये पालेज (गुजरात) से सेठ कुंवरजीभाई आदि का निमंत्रण आया है।

# सिद्धवरकूट धाम में उल्लसित सिद्धभक्ति

**सिद्धवरकूट सिद्धिधाम की अति उल्लास भरी यात्रा के बाद वहाँ पूज्य गुरुदेव का प्रवचन हुआ था। उस सिद्धिधाम के उपशांत वातावरण में सिद्ध भगवन्तों के प्रति गुरुदेव ने हृदय की उदार ऊर्मियाँ व्यक्त की थीं। सिद्धिधाम का यह प्रवचन जिज्ञासुओं को आनन्दायी होगा।**

देखो, यह 'सिद्धवरकूट' तीर्थ है। 'सिद्ध-वर-कूट!' अहो! सिद्ध भगवान जगत के उत्कृष्ट शिखर समान हैं। ऐसा उत्कृष्ट शिखर समान सिद्धपद यहाँ से करोड़ों जीवों ने प्राप्त किया है; इसलिये यह क्षेत्र 'सिद्धवरकूट' है। यहाँ का दृश्य भी ऐसा है कि मानों चारों ओर मुनि ध्यान में बैठे हों! दो चक्रवर्ती, दस कामदेव और साढ़े तीन करोड़ मुनिवर यहाँ से मोक्ष पधारे हैं; वे यहाँ से ऊपर लोकाग्र में सिद्धालय में विराजमान हैं। (—ऐसा कहकर गुरुदेव ने ऊपर दृष्टि की और हाथ द्वारा सिद्धालय बताया; फिर उन सिद्ध भगवन्तों को मानों अपने तथा श्रोताओं के हृदय में उतारते हों इसप्रकार कहा:—)

अहो, सिद्ध भगवन्तों! आपको नमस्कार हो। '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**'—ऐसा कहकर समयसार के मंगलाचरण में ही आचार्यदेव सर्व सिद्धभगवन्तों को अपने तथा श्रोताओं के आँगन में बुलाकर उन्हें नमस्कार करते हैं। अहा, सिद्धभगवन्ता अक्रियचैतन्यबिम्ब हैं, उनकी शांतपरिणति हो गई है; अपने मस्तक पर समश्रेणी में लोक के उत्कृष्ट स्थान पर वे विराजमान हैं। सिद्धभगवन्त लोक के अग्रसर हैं; इसलिये लोक के मस्तक पर विराजते हैं। यदि वे अग्रसर न हों तो लोक के ऊपर क्यों विराजमान हों? जिसप्रकार पगड़ी या मुकुट को लोग अपने सिर पर धारण करते हैं; उसीप्रकार सिद्ध भगवान का स्थान भी लोक के मस्तक पर है; वे जगत में सर्वश्रेष्ठ हैं। साधकों ने अनंत सिद्धभगवन्तों को अपने मस्तक पर रखा है... ध्येयरूप से हृदय में स्थापना की है। इसप्रकार 'सिद्ध' भगवन्त 'वर' अर्थात् उत्कृष्ट और 'कूट' अर्थात् शिखर हैं।—इसप्रकार सिद्ध भगवान में 'सिद्धवरकूट' का भावार्थ उतारा है। ऐसे सिद्ध भगवन्तों को जानकर ध्येयरूप से अपने आत्मा में स्थापित करना अर्थात् अपने आत्मा को उस सिद्धि के पंथ पर परिणमित करना, वह सिद्धिधाम की परमार्थयात्रा है।

देखो न, यहाँ आसपास का दृश्य भी कैसा है! मोक्ष के साधक मुनि ऐसे धाम में रहकर चैतन्य के ध्यान में लीन होते हैं। वाह, धन्य है वह मुनिदशा!! पूर्वकाल में ऐसे वन-जंगल में

रहकर अनेक मुनि कारणपरमात्मा को ध्याते थे... और केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में जाते थे। प्रत्येक आत्मा स्वयं ऐसा कारणपरमात्मा है। जब अंतर्मुख होकर स्वयं अपना ध्यान करे, तब सम्यग्दर्शन होता है। अंतर में कारणपरमात्मा को ध्या-ध्याकर ही अनंत जीव सिद्ध हुए हैं और होंगे।

जिसप्रकार बड़वानी तीर्थ में आदिनाथ भगवान की विशाल मूर्ति मुख्य चूलगिरि पर्वत में ही काटकर बनाई है; बाहर से नहीं आई; उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा चूलगिरि के समान कारणपरमात्मा है; उसके स्वभाव में से काटकर सिद्धपद प्रगट होता है; सिद्धपद बाहर से नहीं आता। सनतकुमार और मधवा—यह दोनों चक्रवर्ती छह खण्ड के राज्य को क्षणमात्र में छोड़कर मुनि हुए और आत्मा को ध्याकर यहाँ से सिद्धपद प्राप्त किया; उसीप्रकार दस कामदेव और करोड़ों मुनिवर यहाँ से सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं; वे सब अंतर में जो कारण था, उसी को ध्याकर कार्यपरमात्मा (सिद्ध) हुए हैं। अपने स्वभाव का सेवन करके यह जीव भी उस सिद्धपद को प्राप्त कर सकता है। स्वभाव में अंतर्मुख होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है, वह सिद्धि का मार्ग है। ऐसे मार्ग से अनंत जीव सिद्धपुरी में पहुँचे हैं।

[यात्रा-महोत्सव के समय सिद्धवरकूट में अतिरमणीक वातावरण के बीच प्रवचन करते हुए गुरुदेव सिद्धपद की भावभीनी धुन व्यक्त कर रहे हैं और श्रोतागण दत्तचित्त होकर आनन्दपूर्वक झेल रहे हैं—अहा! मानों सिद्धभक्ति का शांतरस बह रहा है...]

सिद्धपद के साधक सन्त कहते हैं कि—सर्व सिद्ध भगवन्तों को अपने आत्मा में स्थापित करके, उनकी पंक्ति में बैठकर मैं उन्हें वन्दन करता हूँ, उनका आदर करता हूँ।—इसप्रकार जिसने सिद्धपद का आदर किया, उसने संयोग की और विकार की बुद्धि छोड़कर उत्कृष्ट चेतन्यस्वभाव में आरोहण किया है। परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन-आनन्द और वीर्य स्वरूप परम सिद्धपद ही मुझे आदरणीय हैं—ऐसा निर्णय करके जिसने अपने आत्मा में परम सिद्ध भगवन्तों की स्थापना की, वह साधक जीव अल्पकाल में सिद्धों की बस्ती में पहुँच जायेगा।

अंतर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप साधकभाव प्रगट करके सिद्धपद का यात्री कहता है कि अहो, सिद्धभगवन्तों! अपने अंतर के प्रांगण में आपकी स्थापना करता हूँ। 'तेरा आँगन कितना है?'—तो कहते हैं कि सिद्ध भगवान का समावेश हो इतना विशाल। पूर्णानन्द को प्राप्त सिद्ध

परमात्मा को अपने आँगन में स्थापित करते हुए धर्मी जीव अपने उत्तरदायित्व सहित कहता है कि—हे सिद्ध भगवन्तों! मेरे आँगन में पधारो!

**आवो आवो श्री सिद्ध भगवान, अम घेर आवो रे...**
**रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ! पधारो ने...**
**हुं कई विध पूजूं नाथ! कई विध वंदु रे...**
**मारे आंगणे सिद्धभगवान जोई जोई हरखुं रे...**

अपने आत्मा में से विकार को तिलांजलि देकर मैं आपको स्थापित करता हूँ... हे नाथ! पधारो मेरे अंतर में! निर्मल श्रद्धा-ज्ञानरूप अपने अंतर के आँगन में मैं आपको विराजमान करता हूँ। इसप्रकार साधक-धर्मात्मा अपने आँगन में सिद्धभगवान को स्थापित करके स्वयं भी सिद्धपद की साधना करता है।

**सिद्ध भगवन्तों को तथा सिद्धपद के साधक संतों को नमस्कार हो!**

# भव्य जीवों!

## घोर संसार के मूल को अत्यन्त परिहरो

नियमसार की ११-१२ वीं गाथा में कहा है कि—आत्मा का सहजज्ञान, वह मोक्ष का मूल है; उसे प्राप्त करके भव्य जीव घोर संसार के मूल को परिहरो! समस्त शुभ या अशुभ (पुण्य-पाप) वह घोर संसार का मूल है; उसे अत्यन्त परिहरो अर्थात् सहज ज्ञानस्वभाव को अत्यन्त अंगीकार करो। शुभ या अशुभ दोनों से ऊपर पहुँचकर जीव समग्र शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।

देखो, इसमें अशुभ की भाँति शुभ को भी घोर संसार का मूल कहा। जो संसार के मूल को मोक्ष का कारण मानकर सेवन करे, वह उसका कैसे अन्त आ सकता है?

दूसरे, अशुभ की भाँति शुभ को भी अत्यन्त परिहरने को कहा है। उस शुभ को अंगीकार करते-करते शुद्धता या सुख प्राप्त नहीं होता; किन्तु उसका अत्यन्त परिहार करने से (तथा सहज ज्ञान को अंगीकार करने से) शुद्धता और सुख की प्राप्ति होती है।

पुनश्च, शाश्वत सुख उन अशुभ और शुभ दोनों से ऊपर है; इसलिये शुभ में रहकर सुख प्राप्त नहीं होता किंतु उस शुभ को पार करके उससे ऊपर ऐसे सहज ज्ञानस्वभाव की गहराई में उतरने से सुख की प्राप्ति होती है।

इसप्रकार मोक्ष के मूलरूप सहज ज्ञानस्वभाव को जानकर उसे अंगीकार करने से-अंतर्मुख होकर उसमें गहराई तक उतरने से—भव्य जीव के घोर संसार का मूल छिद जाता है और वह शाश्वत सुख को प्राप्त होता है।

शुभ अपने में होता है, इसलिये उसे 'अभूतार्थ' नहीं कहना चाहिये—ऐसा नहीं है। शुभभाव अपनी पर्याय में होने पर भी, उसके आश्रय से हित की प्राप्ति नहीं होती; इसलिये उसे 'अभूतार्थ' कहा जाता है। अभूतार्थ का अर्थ यह नहीं है कि अपनी पर्याय में उसका अस्तित्व ही नहीं है; किन्तु उसके आश्रय से कल्याण की प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि वह स्वभावभूत नहीं है;—ऐसा बतलाकर उसका आश्रय छुड़वाने के लिये उसे 'अभूतार्थ' कहते हैं। त्रिकाली एकरूप रहनेवाला द्रव्यस्वभाव भूतार्थ है; उस भूतार्थ के आश्रय से कल्याण होता है; तथा उस भूतार्थ -स्वभाव की दृष्टि से भेदरूप या रागरूप समस्त व्यवहार अभूतार्थ है। अभूतार्थ कहो या परिहरने योग्य कहो, उसका परिहार करके सहज स्वभाव को अंगीकार करने से घोर संसार का मूल छिद जाता है और जीव को परम शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

(—नियमसार कलश ४८ के प्रवचन से)

# केवलज्ञान और क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि

[उपरोक्त विषय यहाँ सरल प्रश्नोत्तररूप में दिया जा रहा है]

( १ ) **प्रश्न**—आत्मा का ज्ञानस्वभाव है ?

**उत्तर**—हाँ; आत्मा का ज्ञानस्वभाव है।

( २ ) **प्रश्न**—उसका ज्ञान सामर्थ्य पूर्ण व्यक्त होकर केवलज्ञान हो सकता है ?

**उत्तर**—हाँ, पूर्ण ज्ञान सामर्थ्य व्यक्त होने पर केवलज्ञान होता है।

( ३ ) **प्रश्न**—वह केवलज्ञान वर्तमान वर्तती हुई पर्यायों को जानता है ?

**उत्तर**—हाँ, जानता है।

( ४ ) **प्रश्न**—उसीप्रकार, वर्तमान समय के पश्चात् दूसरे समय में प्रत्येक पदार्थ की कैसी पर्याय होगी, उसे भी वह केवलज्ञान जानता है ?

**उत्तर**—हाँ, उसे भी जानता है।

( ५ ) **प्रश्न**—उसके बाद तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठवें समय में कैसी पर्याय होगी उसे भी वह केवलज्ञान जानता है ?

**उत्तर**—हाँ, उसे भी जानता है।

( ६ ) **प्रश्न**—उसीप्रकार सौ, हजार, लाख या करोड़ समय के पश्चात् किस द्रव्य की कैसी दशा होना है, उसे केवलज्ञान जानता है ?

**उत्तर**—हाँ, उसे भी जानता है।

( ७ ) **प्रश्न**—तदनुसार, असंख्य समय के पश्चात् कैसी पर्याय होगी, उसे भी केवलज्ञान जानता है ?

**उत्तर**—हाँ, उसे भी जानता है।

( ८ ) **प्रश्न**—उसीप्रकार, वर्तमान की भाँति अनंत काल के पश्चात् किस द्रव्य की कैसी पर्याय होगी, उसे भी केवलज्ञान जानता है ?

**उत्तर**—हाँ, वर्तमान पर्याय की भाँति अनंत काल की पर्याय को भी केवलज्ञान प्रत्यक्ष जानता है।

**( ९ ) प्रश्न**—तो इसप्रकार, केवलज्ञानी भगवान को तीनकाल-तीनलोक का सम्पूर्ण ज्ञान वर्तमान में प्रत्यक्ष वर्त रहा है, यह बराबर है ?

**उत्तर**—हाँ, ऐसा ही है।

**( १० ) प्रश्न**—उस केवलज्ञान में ज्ञात हुए अनुसार ही समस्त पदार्थों का तीनकाल का परिणमन होता है और उसमें कुछ भी अन्यथा नहीं होता—यह बात बराबर है ?

**उत्तर**—हाँ, केवलज्ञान में ज्ञात हुए अनुसार ही ज्ञेयों का तीन काल का परिणमन होता है; उसमें किंचित् अन्यथा नहीं होता।

**( ११ ) प्रश्न**—तीनों काल की क्रमबद्धपर्यायें निश्चित् हैं—ऐसा पदार्थों का ही स्वभाव है, या केवली भगवान ने जाना है, इसलिये ऐसा होता है ?

**उत्तर**—पदार्थों का ही ऐसा स्वभाव है कि उनकी तीनों काल की प्रत्येक समय की पर्याय सुनिश्चित है। और पदार्थों का जैसा स्वभाव है, वैसा ही केवली भगवान ने जाना है।

—इसप्रकार आत्मा का 'केवलज्ञान' और समस्त पदार्थों में 'क्रमबद्धपर्याय'—यह दोनों सिद्ध हो गये।

❀ ❀ ❀

## क्रमबद्धपर्याय की प्रतीति में मोक्षमार्ग का सम्यक् पुरुषार्थ

**( १२ ) प्रश्न**—अब, समस्त पदार्थों की तीनों काल की पर्यायें क्रमबद्ध हैं—ऐसा माननेवाले को केवलज्ञान की प्रतीति है या नहीं ?

**उत्तर**—हाँ, यथार्थरूप से क्रमबद्धपर्याय माननेवाले को केवलज्ञान की प्रतीति भी अवश्य है।

**( १३ ) प्रश्न**—केवलज्ञान की प्रतीति के साथ अपने ज्ञानस्वभाव की भी प्रतीति है या नहीं ?

**उत्तर**—हाँ; केवलज्ञान की प्रतीति के साथ अपने ज्ञानस्वभाव की प्रतीति भी अवश्य है।

[प्रवचनसार गाथा ८० के अनुसार।]

**( १४ ) प्रश्न**—ज्ञानस्वभाव की प्रतीति में सम्यग्दर्शनरूप मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ आता है या नहीं ?

**उत्तर**—हाँ, ज्ञानस्वभाव की प्रतीति में सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ आ जाता है, और सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमार्ग का मूल है।

—इसप्रकार क्रमबद्धपर्याय की प्रतीति में मोक्षमार्ग का सम्यक् पुरुषार्थ आ जाता है।

**( १५ ) प्रश्न**—क्रमबद्धपर्याय को मानने से पुरुषार्थ उड़ जाता है–यह बात सच है ?

**उत्तर**—नहीं, यह बात सच नहीं है। क्रमबद्धपर्याय को मानने से तो स्वसन्मुख ज्ञातापने का सम्यक् पुरुषार्थ होता है। हाँ, इतना अवश्य है कि क्रमबद्धपर्याय को मानने से पर में कर्ता बुद्धिरूप मिथ्यात्व का विपरीत पुरुषार्थ उड़ जाता है।

❀ ❀ ❀

## क्रमबद्धपर्याय को न माने तो मिथ्यादृष्टिपना

**( १६ ) प्रश्न**—यदि क्रमबद्धपर्याय को न माने तो ?

**उत्तर**—जो क्रमबद्धपर्याय को नहीं मानता, वह सचमुच आत्मा के ज्ञानस्वभाव को ही नहीं मानता। क्रमबद्धपर्याय को माने बिना तीन काल का सम्पूर्ण ज्ञान सिद्ध नहीं होगा, अर्थात् केवलज्ञान ही सिद्ध नहीं होगा; केवलज्ञान की प्रतीति के बिना ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा नहीं होगी; ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होगा; और सम्यग्दर्शन के बिना मोक्षमार्ग का सम्यक् पुरुषार्थ नहीं होगा।

—इसप्रकार क्रमबद्धपर्याय को माने बिना मोक्षमार्ग का सम्यक् पुरुषार्थ नहीं होता अर्थात् मिथ्यादृष्टिपना ही रहता है।

—:इसलिये:—

मोक्षमार्ग का सम्यक् प्रयत्न करने के अभिलाषी जीव, प्रथम ही केवलज्ञान और क्रमबद्धपर्याय का स्वरूप भलीभाँति समझकर उसकी नि:सन्देह प्रतीति करो।

# बंध-मोक्ष के कारणरूप परिणाम

[ प्रवचनसार गाथा १७९-८१ के प्रवचनों से ]

( १ ) **प्रश्न**—बंध-मोक्ष का सिद्धान्त क्या है ?

**उत्तर**—रागादि युक्त जीव बँधता है और वैराग्य परिणत जीव छूटता है, यही संक्षेप में बंध-मोक्ष का सिद्धान्त जानना।

( २ ) **प्रश्न**—परिणाम बंध का कारण है या नहीं ?

**उत्तर**—अमुक परिणाम बंध का कारण है, समस्त नहीं।

( ३ ) **प्रश्न**—कौन से परिणाम बंध का कारण हैं ?

**उत्तर**—जो परिणाम राग-द्वेष-मोह से युक्त हों।

( ४ ) **प्रश्न**—सिद्ध भगवान के परिणाम होते हैं ?

**उत्तर**—हाँ; परिणाम समस्त जीवों के होते हैं।

( ५ ) **प्रश्न**—सिद्ध भगवान को परिणाम होने पर भी उन्हें बंधन क्यों नहीं होता ?

**उत्तर**—क्योंकि उनके परिणाम राग-द्वेष-मोह से युक्त नहीं हैं; इसलिये उन्हें बन्धन नहीं होता।

( ६ ) **प्रश्न**—बन्धन किसे होता है ?

**उत्तर**—जो जीव रागपरिणत है, उसी को बंधन होता है।

( ७ ) **प्रश्न**—कौन सा जीव मुक्त होता है ?

**उत्तर**—वैराग्यपरिणत जीव मुक्त होता है; वह कर्मों से नहीं बँधता।

( ८ ) **प्रश्न**—इस पर से क्या सिद्धान्त निश्चित होता है ?

**उत्तर**—'रागादिपरिणत जीव ही बँधता है, वैराग्यपरिणत जीव नहीं बँधता'—इससे यह निश्चित होता है कि बंध का मूलकारण रागादि परिणाम ही हैं, इसलिये निश्चय से तो जीव अपने रागादि से ही बँधता है।

( ९ ) **प्रश्न**—'विशिष्ट परिणाम से' बंधन होता है—ऐसा क्यों कहा ? 'परिणाम से' बंधन होता है-ऐसा क्यों नहीं कहा ?

**उत्तर**—क्योंकि समस्त परिणाम बंध का कारण नहीं हैं; बंध का कारण तो अमुक विशिष्ट परिणाम ही हैं। सम्यग्दर्शनादि भाव भी परिमाण हैं, किन्तु वे परिणाम बंध का कारण नहीं हैं; इसलिये बंध के कारण में से उनका अपवाद बतलाने के लिये 'विशिष्ट परिणाम' को ही बंध का कारण कहा है।

**( १० ) प्रश्न**—यहाँ विशिष्ट परिणाम किन्हें कहा है ?

**उत्तर**—यहाँ विशिष्ट परिणाम अर्थात् राग-द्वेष-मोह से संयुक्त परिणाम; वे ही बंध का कारण हैं।

**( ११ ) प्रश्न**—परिणाम कितने प्रकार के हैं ?

**उत्तर**—परिणाम दो प्रकार के हैं—( १ ) स्वद्रव्य-प्रवृत्त, और ( २ ) परद्रव्य-प्रवृत्त।

**( १२ ) प्रश्न**—परद्रव्य-प्रवृत्त परिणाम कैसे हैं ?

**उत्तर**—वे परिणाम पर के आश्रय से उपरक्त हैं, अर्थात् राग-द्वेष-मोह से रक्त हैं-मलिन हैं; और वे बंध का कारण हैं।

**( १३ ) प्रश्न**—स्वद्रव्य प्रवृत्त परिणाम कैसे हैं ?

**उत्तर**—वे परिणाम स्वभाव के आश्रित निर्मल हैं, राग-द्वेष-मोह से मलिन नहीं हैं और वे मोक्ष के कारण हैं।

**( १४ ) प्रश्न**—शुभपरिणाम स्वद्रव्यप्रवृत्त हैं या परद्रव्यप्रवृत्त हैं ?

**उत्तर**—शुभपरिणाम भी परद्रव्यप्रवृत्त हैं; वे पराश्रय से होते हैं और राग से रंगे हुए-मलिन हैं; इसलिये वे भी बंध का कारण ही हैं।

**( १५ ) प्रश्न**—कौन-से परिणाम धर्म हैं और कौन-से अधर्म ?

**उत्तर**—स्वद्रव्याश्रित ऐसे निर्मल परिणाम, सो धर्म हैं और परद्रव्याश्रित परिणाम राग-द्वेष-मोह से रंगे हुए हैं, वे अधर्म हैं।

**( १६ ) प्रश्न**—कौन-से परिणाम करने योग्य हैं ?

**उत्तर**—स्वद्रव्याश्रित निर्मल परिणाम करने योग्य हैं और परद्रव्याश्रित मलिन परिणाम छोड़ने योग्य हैं। किन्तु पहले स्वद्रव्य और परद्रव्य का भेदज्ञान करना चाहिये।

# ध्रुव में से धर्म लो

धर्म की बात सुनकर जीवों को विचार आता है कि—धर्म लें कहाँ से ?—शरीर की क्रिया में से धर्म आता होगा ? पुण्य में से आता होगा ? या किसी स्थान विशेष में से मिलता होगा ?

आचार्यदेव समझाते हैं कि—'ध्रुव में से धर्म लो'!—तुम्हारा ध्रुव आत्मा ही धर्म की खानि है; वही धर्म का स्थान है; उसी में से तुम्हारा धर्म आता है। इसके अतिरिक्त शरीर की क्रिया में से, राग में से, बाह्य स्थानों में से या अन्यत्र कहीं से धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती।

धर्म जहाँ होगा, वहीं से आयेगा या कहीं बाहर से ? भाई ! तुम्हारा धर्म तुम्हारे आत्मस्वभाव में ही है, तुम से बाहर कहीं तुम्हारा धर्म नहीं है; इसलिये बाहर से धर्म नहीं आयेगा। अपने आत्मस्वभाव में ही अंतर्मुख होकर उसमें से सम्यग्दर्शनादि धर्म प्राप्त करो ! जिसप्रकार रत्नों की खानि में से ही रत्न निकलते हैं, उसीप्रकार चैतन्यरत्न की ध्रुव खानि आत्मा है; उसकी गहराई में उतरकर उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्न निकालो !

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

# अवश्य स्वाध्याय करें

| | | | |
|---|---|---|---|
| पंचास्तिकाय | ४ ॥) | ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव | २ ॥) |
| मूल में भूल | ।।।) | मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द | ५) |
| श्री मुक्तिमार्ग | ॥=) | सम्यग्दर्शन (दूसरी आवृत्ति) | १ ॥= |
| श्री अनुभवप्रकाश | ॥) | द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा) | २) |
| श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह | ।।।) | जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द | १ ।=) |
| समयसार प्रवचन भाग २ | ५ ।) | | |
| समयसार प्रवचन भाग ३ | ४ ॥) | भेदविज्ञानसार | २) |
| प्रवचनसार | ५) | अध्यात्मपाठसंग्रह | ५) |
| अष्टपाहुड़ | ३) | समाधितन्त्र | २ ।=) |
| चिद्विलास | १=) | समयसार पद्यानुवाद | ।) |
| आत्मावलोकन | १) | निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ? | =) |
| मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र० | १ ।=) | स्तोत्रत्रयी | ॥) |
| द्वितीय भाग | २) | लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका | =) |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र० | ॥-) | 'आत्मधर्म मासिक' लवाजम- | ३) |
| द्वितीय भाग | ॥-) | आत्मधर्म फाइलें १-३-५-६-७-८-१०-११-१२-१३ वर्ष | ३ ।।।) |
| तृतीय भाग | ॥-) | | |
| जैन बालपोथी | ।) | शासन प्रभाव | =) |

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)


मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।